International Journal of Hindi Research
www.hindijournal.com
ISSN: 2455-2232
Received: 16-07-2026, Accepted: 16-08-2026, Published: 31-08-2026
Volume 12, Issue 3, 2026, Page No. 125-127

मध्यकालीन संत साहित्य: त्याग और संगत की महत्ता

महिपाल सिंह
वीर दुर्गादास राठौड़ निजी महाविद्यालय, समदड़ी, राजस्थान, भारत

सारांश
संत साहित्य का आविर्भाव उसी समय हुआ जब देश में मुसलमानों का आक्रमण हो रहा था। संतों ने इसका विरोध न करके एकेश्वरवादी भावना के माध्यम से नवजागरण एवं स्वावलंबन को जगाने का प्रयास समाज में किया जिससे समाज में सामूहिक मनोवृति का झुकाव लोकोन्मुख हो गया। दादूपंथ ने हिंदू–मुस्लिम वर्गों की दृष्टि से परे एक होने का मार्ग प्रस्तुत किया। संत साहित्य में त्याग और समर्पण को अलग करना मुश्किल है। संतों का समर्पण से आशय किसी वस्तु या विकार को त्यागकर अन्य पर न्योछावर करना है। जबकि त्याग में उसे किसी वस्तु को न्योछावर करने की आवश्यकता नहीं है। त्याग में केवल उसे छोड़ना है। त्याग में किसी वस्तु या विचार की चिंता किए बगैर निश्चित हो जाना हैं जबकि समर्पण में उसकी चिंता ईश्वर या गुरु को रहती है। समर्पण में पूर्ण निष्ठा एवं प्रेम तत्व की अधिकता रहती है। त्याग में स्वानुभूति एवं आत्मचिंतन, चित्तशुद्धि या आत्म परिष्करण का प्रभाव दिखता है। संत साहित्य में विशेषकर मनोविकारों को त्यागने का संदेश है। संतों के अनुसार सांसारिक सुख–सुविधाओं के प्रति अत्यधिक मनुष्य को सत्य एवं आध्यात्मिकता से दूर करता है।

मूल शब्दः संत–साहित्य, त्याग, अहं, मनोविकार, सत्य, ईश्वर भक्ति आदि।

संत साहित्य में त्याग की भूमिका अत्यंत व्यापक और प्रेरणादायी दिखाई पड़ती हैं। संत साहित्य के अनेक संत कवियों एवं विश्व के लगभग सभी धर्म–संप्रदायों ने इसे मानव देह का शत्रु माना है। कबीर, दादू, नानक, रैदास आदि संतों ने बाहरी आडंबर को छोड़कर आत्मशुद्धि और ईश्वर भक्ति अपनाने की प्रेरणा दी है। संसार के सभी पापाचारों का कारण मनोविकार है। संत रविदास शरीर के पाँचों विकारों को नष्ट करने अर्थात् त्याग करने का संदेश देते हैं।

भ्रिग मीन भ्रिंग पतंग कुंजर, एक दोष विनास।
पंच दोष असाध जामहिं ताकि केतक आस।। [1]

संत मत में आशा एवं अहंभाव के त्याग को श्रेष्ठ माना है। भगवत् प्राप्ति का मार्ग है– 'अहं का त्याग', जिसे दादूपंथ में 'आपा मेटना' कहा है। जब तक 'आपा' का त्याग नहीं करते हैं तब तक द्वैत बुद्धि परिपुष्ट रहेगी। गुरु नानकदेव काम, क्रोधादि से मुक्ति के लिए आशा को त्यागने को बात करते हैं–

आसा मनसा सकल त्यागी कै, जगतें रहे निरासा।
काम क्रोध जेहिं परसै नाहिन, तेती घट ब्रह्म निवासा।। [2]

कबीर दूसरों से आह्वान करते हैं कि मैंने जलती हुई लकड़ी से अपना घर जलाया है अर्थात् अपने मनोविकारों को जलाया है। जो ईश्वर के मार्ग पर चलेगा उसे यह सब करना पड़ेगा।

कबीरा खड़ा बाजार में लिये लाकाठा हाथ।
अब घर जारू तास का जो चले हमारे साथ।। [3]

त्याग महत्ता में काम, क्रोध, लोभ, मोह, माया आदि के माध्यम से इस अध्याय को समझाया जा सकता है। अपरिग्रह, त्याग व समर्पण आदि लगभग एक–दूसरे के पर्याय है। अपरिग्रह में पदार्थों का त्याग है। सामाजिक दृष्टि में संत समाज सुधार की बात करते हैं तो व्यक्तिगत एवं सामूहिक त्याग की बात करते हैं। भारतीय संस्कृति में हम ''संन्यास को ही त्याग का पर्याय मानते हैं किंतु ऐसा नहीं है। क्योंकि तप का निषेध तो त्याग में नहीं है। दान संन्यासी भी कर सकता है। प्रश्न यह है कि त्याग में क्या आसक्ति है? क्या हम त्याग में या संन्यास में प्रतिफल की कामना रखते हैं। मोक्ष की कामना भी नहीं। क्लेश के भय से किया गया भी त्याग नहीं हो सकता। जीवन में कर्मत्याग संभव नहीं है। अत: कर्मफल त्याग की सलाह देनी चाहिए।'' [4] व्यक्तिगत त्याग में अहं का नाश, लोभ, मोह–माया समाहित है। व्यतिगत त्याग ही सामाजिक प्रतिष्ठान का अनुष्ठान है जिससे नारी उत्पीड़न, वर्ण–जाति पाखंड आदि का सार्वजनिक रूप से उन्मूलन कर सकते हैं। दादूपंथ में व्यक्तिगत त्याग को सर्वाधिक महत्ता दी है।

अहं का त्याग

संतों ने संसार को मिथ्या मानकर अहं के विलयन के महत्त्व को पूर्ण स्थान दिया है। मध्यकालीन भारतीय समाज अशांति से ग्रस्त एवं आत्मबल से शून्य था तब संतों ने जनता से अहं का त्याग कर आत्म शुद्धता का आह्वान किया। अहं का त्याग साधक की साधना के लिए पहली सीढ़ी है। है। दादूपंथ में अहं के त्याग को 'आपा मेटना' कहते हैं। अहं का त्याग अर्थात् जाति, शरीर, विद्या, ईर्ष्या, रूप आदि के अहंकार का त्याग की बात है। संत साहित्य अहं के त्याग की उत्तमावस्था देखने को मिलती है। संत अपनी प्रतिष्ठा, कुल, लाज, मर्यादा, मान–बड़ाई रूपी अहं को त्यागने की बात करते हैं।

आत्मा के ईश्वरीय साक्षात्कार के लिए अहं का नाश आवश्यक है जिसे 'आपा मेटना' कहते हैं। द्वैतभाव को समाप्त करने के लिए अहं का नाश ज़रूरी है।

दादू मैं नांही तब तक एक है, मैं आई तब दोय।
मैं तै पड़दा मिट गया, तब दूजा नांही कोय। [5]

अत: अहं के त्याग अर्थात् जाति, शरीर, विद्या, ईर्ष्या, रूप आदि के अहंकार का त्याग की बात है। दादूपंथ के संत अहं को सबसे बड़ा शत्रु मानते हैं। अहं ही मुक्ति में बाधक है। आत्मा के आगे अहंकार खड़ा है, पीछे की ओर परब्रह्म प्रत्यक्ष खड़ा है। अत: अहं को मारकर व्यक्ति ब्रह्म बन सकता है।

दादू मेरा वैरी मैं मुवा, मुझे न मारे कोई।

मैं ही मुझको मारता, मैं मरजीवा होइ।। [6]

सांसारिक अहंकार एवं ईश्वरीय साक्षात्कार एक साथ नहीं रह सकते हैं। अहंकारी जीवन जीने वाले को दादूदयाल स्पष्ट चेतावनी देते हैं कि –

गरब न कीजिये रे, गरबैं होई विनास
गरबैं गोविंद ना मिलै, गरब नरक निवास
गरबैं रसातलि जाइये, गरबैं घोर अंधार
गरबैं भौजल डूबिये, गरबैं वार न पार।। [7]

संत पीपा ईश्वर को परम सत्य का दर्जा देते हैं। मनुष्य का अहंकार तभी तक है जब तक परम सत्य का संचरण है। अहं को मिटाकर प्राण जब परम सत्ता में विलीन हो जायेगा तब तक शरीर केवल मुट्ठी भर राख (पिंड) रह जाएगा। नाशवान शरीर को पंचतत्व का पुतला बताते हुए कहते हैं–

पंच तत्त्व रो पूतरों गमतों घणो घमंड।
पीपा साँच न संचरै, पड्यो रहे पियंड।। [8]

संत कबीर ने तो राज्य के साथ यौवन की आशा का अहं छोड़ने तक की बात कही है। यौवन के घमंड की तुलना पलाश के फूल से करते हुए कहते हैं कि–

कबीर कहा गरबियो, इस यौवन की आस।
केसू फूले दिवस चारि, खंखर भए पलास। [9]

कुसंग का त्याग

संगति का संबंध भावों से है। जैसी संगति वैसा ही व्यक्ति का आचरण या व्यवहार होता है। संतों ने संगति को वृत्ति भी कहा है। संगति सद्भाव एवं विध्वंस दोनों को जन्म देती है। जैसी जिसकी वृत्ति होगी उनके अनुसार संगति का असर होगा। कबीर कहते हैं कि–

मूरिष संग न कीजिए, लोहा जलि न तिराइ।
कदली सीप भवंग मुष, एक बूँद तिहुँ भाइ।। [10]

कबीर ने कुसंगति को ऊसर खेत की संज्ञा दी है। कुसंगति काल से भी भयानक है। संगति के निर्वाह की बात भी कबीर करते हैं। प्रेम या संगति उनसे करें जिनसे निर्वाह संभव हो। पूरे संसार को काजल की कोठरी कहते हुए उपदेश देते हैं कि–

काजल केरी कोठरी तैसा यहुँ संसार
बलिहारी ता दास की, पैसि र निकसणहार। [11]

संत साहित्य संगति को आचरण भी मानता है। कुसंगी कभी सुखी नहीं रह सकता। कुसंगी विषधर भुजंग के समान है। संत पीपाजी सबसे बुरा कुसंग जुआ व जार (परस्त्री गमन) मानते हैं अर्थात् पीपाजी कुल मिलाकर नरक को कुसंग का दर्जा देते हैं। कुसंग के त्याग का महत्त्व दर्शाते हुए लिखते हैं कि–

नरग–नरग सब कोई कहे, नरग घणो बदरंग।
पीपा नरग बढ़े गणो, होवे जठे कुसंग।। [12]

कुसंग के त्याग पर सुंदरदास कहते हैं कि मनुष्य को विष या अफीम पी लेना पर दुष्ट का संग नहीं करना चाहिए।

सुंदर विष हू पीजिये, मरिये खाइ अफीम।
दुर्जन संग कीजिये, गलि मरिये पुनि हीम।। [13]

इस प्रकार संतों ने कुसंगति की कदर्थना की। संत दुष्ट की संगति को भंयकर मानते हैं। साधना में कुसंगति को बड़ा बाधक माना है। कुसंगति का प्रभाव मनुष्य के तन–मन पर अवश्य पड़ता है। संत कहते हैं कि– ''साँप काट ले तो चिंता मत करो, बिच्छु डंक मार दे तो इसे अच्छा मानो, सिंह खा ले, भयभीत न हो, हाथी आहत करे, हानि न मानो, ये सभी दुःख भले ही झेलने पड़े लेकिन कभी दुष्ट का संग न हो यही श्रेयस्कर है।'' [14] संत वाजिद कुसंगी लोगों को त्यागने का उपदेश देते हैं। वाजिद 'गुण मूरिख नामों की साखी' में कुसंगी व्यक्ति को मूर्ख कहते हैं। वे मूर्ख को सूखे काठ जैसा, उबड़–खाबड़ चट्टानों जैसा अज्ञानी, काठ का घोड़ा, दुष्ट पशु आदि नाम देते हुए लिखते हैं कि चंदन का स्पर्श करने पर भी भुजंग अपना विष नहीं छोड़ता वैसे ही कुसंगी लोग अपनी नैसर्गिक प्रवृति को नहीं छोड़ते और समाज को पीड़ा पहुँचाते हैं।

निष्कर्ष

मध्यकालीन भारतीय समाज अशांति से ग्रस्त एवं आत्मबल से शून्य था तब संतों ने लोगों को अहं का त्यागकर आत्म शुद्धता का आह्वान किया। इस प्रकार मध्यकालीन संतों ने सांसारिक वस्तुओं के परित्याग की अपेक्षा अहंकार, लोभ, मोह, स्वार्थ और भौतिक आसक्ति आदि के त्याग को श्रेष्ठ बताया। संतों ने त्याग को अत्यंत व्यापक मानते हुए मनुष्य को आत्मशुद्धि और ईश्वर–भक्ति का मार्ग अपनाने की प्रेरणा दी हैं। संतों का त्याग मानविकी आत्मसंयम संतोष और लोकमंगल की ओर ले जाता है। वे मानते हैं कि सांसारिक सुख–सुविधायें मनुष्य को सत्य और आध्यात्मिकता से दूर करती

संतों का त्याग निष्काम कर्म, परोपकार, सेवा और समता की भावना से प्रेरित होकर सहज जीवन जीने पर बल देता है। संतों का त्याग पलायन नहीं अपितु निष्काम कर्म, सेवा और समता की भावना से जुड़ा हुआ है तथा स्वारथ का त्याग कर मानवता, प्रेम सत्य का संदेश देता है। संत साहित्य ने बाहरी दिखावे की अपेक्षा मन की पवित्रता को महत्त्व दिया। संत साहित्य का त्याग समाज को लोकमंगल की ओर ले जाता है। अतः आज के भौतिकतावादी युग में मध्यकालीन संतों का साहित्य अत्यंत प्रासंगिक है।

संदर्भ ग्रंथ सूची

1. कुमारी, विनिता: हिन्दी सन्त साहित्य के स्रोत, पृ. 89
2. वही, पृ. 90
3. अग्रवाल, सुनीता धानुका: मध्यकालीन संत साहित्य और मानव मूल्य, अमन प्रकाशन कानपुर, 2013, पृ. 93
4. गुलाब कोठारी: त्याग देना त्याग नहीं है : राजस्थान पत्रिका, 25/02/2023
5. पुष्कर, नारायण दास: श्री दादूवाणी, राजस्थानी संत साहित्य परिचय, अज्ञात पृ. 12
6. वही, पृ. 373
7. नंदवाना, नवीन: समाज के दिशाबोधक संत दादू दयाल: भक्तिकालीन काव्य की प्रासंगिकता: नरेश मिश्र (सं), संगम प्रकाशन, नई दिल्ली, 2019, पृ. 131
8. सहगल, पूरन: संत पीपाजी एवं भक्ति आंदोलन, आर्यावर्त्त संस्कृति संस्थान, दिल्ली, 2013, पृ. 176
9. गुप्त, माता प्रसाद: कबीर ग्रंथावली, साहित्य भवन, इलाहबाद, 1985, पृ. 39
10. शर्मा, रामकिशोर: कबीर ग्रंथावली, लोकभारती प्रकाशन (12वाँ संस्करण), 2018, पृ. 231
11. वही, पृ. 231

12. सहगल, पूरन: संत पीपाजी एवं भक्ति आंदोलन, आर्यावर्त्त संस्कृति संस्थान, दिल्ली, 2013, पृ. 351
13. शास्त्री, बजरंगदास (सं): ज्ञानसमुद्र एवं साषी ग्रन्थ, श्री दादूवाणी परिषद्, नरैना, जयपुर, 2008, पृ. 213
14. कुमारी, विनीता: हिन्दी सन्त साहित्य के स्रोत, पृ. 113